राजस्थान उच्च न्यायालयए जयपुर पीठ

एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 5731/1999

रामानुज शर्मा (मृतक) अपने **विधिक प्रतिनिधि** के माध्यम से

(i) **श्रीमती ऋतु शर्मा**, उम्र लगभग 64 वर्ष, **पत्नी श्री** राजीव शर्मा, निवासी 640, **विवेक** विहार, श्याम नगर, जयपुर।

(ii) **श्रीमती नीति शर्मा**, उम्र लगभग 62 वर्ष, डॉ. आशुतोष शर्मा की पत्नी, निवासी 52, न्यू मोती बाग, नई दिल्ली।

(iii) **श्रीमती नीरा द्रोण**, उम्र 61 वर्ष, पत्नी श्री **रविन्द्र द्रोण**, निवासी जगतपुरा, जयपुर।

(iv) **श्रीमती सीमा** शर्मा, उम्र लगभग 57 वर्ष, **पत्नी** कर्नल पीयूष शर्मा, निवासी चित्रकूट, जयपुर।

(v) **कर्नल राम मधुकर शर्मा**, पुत्र **स्वर्गीय श्री** रामानुज शर्मा, उम्र लगभग 51 **वर्ष**, निवासी 282, व्यास मार्ग, राजा पार्क, जयपुर।

----याचिकाकर्तागण

बनाम

राजस्थान सरकार इसके सचिव, कार्मिक विभाग, **राजस्थान सरकार**, सचिवालय, जयपुर के माध्यम से

----प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता (गण) की ओर से	:	**श्री सुनील समदरिया के लिए**
		श्री अरिहंत समदरिया
प्रत्यर्थी (गण) की ओर से	:	श्री के.एस. चंदेल अति. जीसी
		श्री सत्येन्द्र मीना के साथ

माननीय न्यायमूर्ति अनूप कुमार ढंड

<u>आदेश</u>

आदेश आरक्षित करने की तिथि : 31.08.2023

आदेश उच्चारित करने की तिथि : 14.09.2023

रिपोर्टेबल

1. याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी द्वारा जारी दिनांक 03.06.1999 के दंड आदेश को चुनौती देकर भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है, जिसके द्वारा दो साल के लिए पेंशन में 5% कटौती का जुर्माना लगाया गया था।

याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुतियाँ:

2. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति की नियत तारीख 30.06.1991 थी, लेकिन उसकी सेवानिवृत्ति से एक दिन पहले, राजस्थान सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1958 के नियम 16 के तहत आरोप-पत्र (के लिए) वर्ष 1977 से संबंधित एक घटना के लिए याचिकाकर्ता को संक्षिप्त '1958 के नियम') दिए गए थे। अधिवक्ता का कहना है कि 14 साल की देरी के बाद, याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए गलत इरादे से आरोप-पत्र दिया गया था। अधिवक्ता का कहना है कि हालांकि याचिकाकर्ता ने जेल प्रहरियों के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए मामले को सक्षम प्राधिकारी के पास भेज दिया था, जिनके खिलाफ दोषसिद्धि और परिवीक्षा का निर्णय पारित किया गया था, लेकिन सक्षम प्राधिकारी ने उन व्यक्तियों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की। अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र देने के बाद भी, उन आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई, जिन्हें कानून के सक्षम प्राधिकारी द्वारा परिवीक्षा का लाभ दिया गया था। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता के पिछले बेदाग सेवा करियर को खराब करने के लिए अनुचित कार्य किया गया और अंततः उसे दो साल के लिए 5% पेंशन रोकने के दंड से दंडित किया गया। अधिवक्ता का कहना है कि किसी अपराधी को उसके करियर के अंतिम पड़ाव यानी उसकी सेवानिवृत्ति से ठीक एक दिन पहले आरोप-पत्र जारी नहीं किया जा सकता था।

अपने तर्क के समर्थन में, अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा जताया है:

1. **मध्य प्रदेश सरकार बनाम बनी सिंह 1990 (सप्प) एससीसी 738** में प्रकाशित;
2. **एम.वी. बिजलानी बनाम भारत संघ ने (2006) 5 एससीसी 88** में प्रकाशित;

3. पी.वी. महादेवन बनाम एमडी, टी.एन. हाउसिंग बोर्ड में प्रकाशित **(2005) 6 एससीसी 636;**

4. आंध्र प्रदेश सरकार बनाम एन. राधाकृष्णन ने (1998) 4 एससीसी 154 में प्रकाशित; **और**

5. सुषमा शर्मा बनाम राजस्थान सरकार प्रकाशित **2016 एससीसी ऑनलाइन राज 10368.**

अधिवक्ता का कहना है कि इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय का हस्तक्षेप आवश्यक है।

<u>प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुतियाँ:</u>

3. इसके विपरीत, राज्य-प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता महानिरीक्षक (जेल) के पद पर कार्यरत था और वह इस तथ्य से अच्छी तरह से वाकिफ था कि दो जेल प्रहरी थे। दोषी पाया गया और सक्षम न्यायालय द्वारा उन्हें परिवीक्षा का लाभ दिया गया, लेकिन इन तथ्यों को जानने के बावजूद, याचिकाकर्तागण ने उन व्यक्तियों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की और उनके मामले को सीसीए नियम, 1958 के नियम 19 के अंतर्गत विभागीय जांच शुरू करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के पास नहीं भेजा। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता ने उपरोक्त दो व्यक्तियों को बचाने के लिए जानबूझकर दुर्भावनापूर्ण तरीके से काम किया है, इसलिए, विभाग ने 1958 के नियमों के तहत याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र देने में कोई अवैधता नहीं की है। अधिवक्ता प्रस्तुत किया गया कि गहन जांच की गई और जांच के बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ दंडात्मक आदेश पारित किया गया। अधिवक्ता का कहना है कि तथ्य की खोज सक्षम प्राधिकारी द्वारा दर्ज की गई है, इसलिए, इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

<u>विश्लेषण और तर्क:</u>

4. बार में की गई दलीलों को सुना और उन पर विचार किया और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

5. माना जाता है कि 30.06.1991 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद,

याचिकाकर्ता महानिरीक्षक (जेल) के पद से सेवानिवृत्त हो गया। 1958 के नियमों के नियम 16 के तहत उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही दिनांक 29.06.1991 को आरोपों का ज्ञापन (इसके बाद 'चार्ज शीट' के रूप में संदर्भित) जारी करके शुरू की गई थी, जो वर्ष 1977 की संबंधित घटना के लिए यानी उनकी सेवानिवृत्ति से ठीक पहले दी गई थी। उन पर निम्नलिखित तीन आरोप लगाए गए:

(I) यह कि याचिकाकर्ता ने 1958 के नियमों के नियम 19 (1) के तहत जेल प्रहरियों मोहम्मद अयाज़ और चतुर्भुज के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की, जिन्हें 18.03.1976 को आपराधिक मामले संख्या 465/1974 में दोषी ठहराया गया था और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बीकानेर की अदालत द्वारा उन्हें परिवीक्षा का लाभ दिया गया था और 05.07.1977 उक्त निर्णय को जिला एवं सत्र न्यायाधीश की अदालत ने बरकरार रखा था;

(II) यह कि अपने अधिकार का दुरुपयोग करके, इन दोनों जेल प्रहरियों के निलंबन आदेश को 09.09.1977 को रद्द कर दिया गया था और यह सरकार पर छोड़ दिया गया था कि वह उनके खिलाफ कोई कार्रवाई करे;

(III) यद्यपि इन दोनों जेल प्रहरियों के विरूद्ध कार्यवाही हेतु शासन से मार्गदर्शन मांगा गया था परन्तु इन प्रहरियों के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गयी तथा अपने पद का दुरूपयोग कर इन प्रहरियों को अनुचित लाभ पहुंचाया गया।

6. याचिकाकर्ता ने इन आरोपों का जवाब दाखिल किया। याचिकाकर्ता ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष कहा कि इन दोनों गार्डों के निलंबन को रद्द करने के बाद, सेवा में उनकी निरंतरता के संबंध में मामला सरकार के विवेक पर छोड़ दिया गया था। इसलिए, पूरा प्रकरण 1977 से ही अधिकारियों की जानकारी में था और यदि अधिकारियों द्वारा 1958 के नियमों के नियम 19 के तहत इन व्यक्तियों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई, तो याचिकाकर्ता इसके लिए जिम्मेदार नहीं था।

7. याचिकाकर्ता के जवाब और बचाव पर विचार करने के बाद अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने उसे तीनों आरोपों के लिए दोषी ठहराया। प्राधिकारी द्वारा इस तथ्य पर ध्यान दिया गया कि यद्यपि संबंधित समय पर उक्त दोनों जेल प्रहरियों अर्थात् मोहम्मद अयाज़ और चतुर्भुज के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही शुरू नहीं की गई थी, लेकिन अंततः दोनों को आदेश दिनांक 26.11.1997 द्वारा संचयी प्रभाव से दो वार्षिक वेतन वृद्धि रोकने के दंड से दंडित किया गया था। लेकिन, साथ ही, यह देखा गया कि सीसीए नियम, 1958 के नियम

19 (1) के तहत उन्हें सेवा से नहीं हटाया गया क्योंकि याचिकाकर्ता की ओर से प्रासंगिक समय पर कार्रवाई नहीं की गई जब इन दोनों व्यक्तियों को दोषी पाया गया। भारतीय दंड संहिता की धारा 466 और 244/119 के तहत अपराध के लिए और उन्हें परिवीक्षा का लाभ दिया गया। याचिकाकर्ता को दिनांक 03.06.1999 के आक्षेपित आदेश द्वारा दो वर्षों की 5% पेंशन रोकने से दंडित किया गया था।

8. यह ध्यान देने योग्य है कि जब, एक बार अधिकारियों को इस तथ्य के बारे में अच्छी तरह से पता था कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बीकानेर द्वारा उपरोक्त दोनों जेल प्रहरियों को दोषी ठहराया गया है और परिवीक्षा का लाभ दिया गया है, दिनांक 18.03.1976 के फैसले और उनकी अपील के तहत उसी फैसले के विरुद्ध सत्र न्यायाधीश की अदालत द्वारा 05.07.1977 को खारिज कर दिया गया था और उनके निलंबन आदेश को रद्द कर दिया गया था और उन्हें वर्ष 1977 में सेवा में वापस ले लिया गया था, फिर सीसीए नियमों के नियम 19 (1) के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही क्यों की गई? उनके विरुद्ध सेवा से हटाने हेतु 1958 की कार्यवाही नहीं की गई। याचिकाकर्ता के खिलाफ काफी समय तक कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई क्यों नहीं की गई और प्रत्यर्थी ने 14 साल से अधिक समय तक इंतजार क्यों किया और 29.06.1991 को यानी 30.06.1991 को उनकी सेवानिवृत्ति से ठीक एक दिन पहले आरोप-पत्र क्यों जारी किया गया? प्रत्यर्थी की ऐसी कार्रवाई काफी मनमानी है।

9. यदि प्रत्यर्थी सीसीए के नियम 1958 के 19 (1) के तहत निहित शक्ति का प्रयोग करके दो गार्ड मोहम्मद अयाज़ और चतुर्भुज के खिलाफ उनकी सजा के आधार पर कार्रवाई करने और उन्हें सेवा से हटाने के लिए परिवीक्षा देने के लिए इतना उत्सुक था। तो फिर 26.11.1997 को उनकी दो वार्षिक वेतन वृद्धियाँ संचयी प्रभाव से रोकने का मामूली दण्डात्मक आदेश क्यों पारित किया गया। प्राधिकारी, नियमावली 1958 के नियम 19 के तहत निहित प्रक्रिया का पालन करते हुए उनके खिलाफ कार्रवाई कर सकता था।

10. एक बार जब 1958 के नियमों के नियम 19 के तहत उनके खिलाफ ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की गई थी तो प्रत्यर्थी के पास याचिकाकर्ता के खिलाफ उसकी सेवानिवृत्ति की पूर्व संध्या पर इन आरोपों के लिए आरोप-पत्र देने का कारण या अवसर कहां उपलब्ध था। इसलिए, वर्ष 1977 से संबंधित मामले में 14 साल बीत जाने के बाद प्रत्यर्थी ने

दुर्भावनापूर्ण और मनमाने तरीके से काम किया है।

11. इस न्यायालय की राय है कि यदि याचिकाकर्ता ने वर्ष 1977 में जेल प्रहरियों के खिलाफ कार्रवाई न करके अपने कर्तव्यों के निर्वहन में लापरवाही बरती थी तो इन दोनों व्यक्तियों और याचिकाकर्ता के खिलाफ 14 वर्षों तक कोई कार्रवाई क्यों नहीं की गई। विभागीय जांच और उनकी सेवानिवृत्ति की पूर्व संध्या पर ही उन्हें आरोप-पत्र दिया गया था। 14 वर्षों तक कोई कार्रवाई न करने का रत्ती भर भी स्पष्टीकरण नहीं है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि जानबूझकर याचिकाकर्ता को उसकी सेवानिवृत्ति की पूर्व संध्या पर आरोप-पत्र दिया गया था और ऐसी कार्रवाई को सद्भावना नहीं कहा जा सकता है। इससे याचिकाकर्ता पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है क्योंकि अनुशासनात्मक जांच लंबित होने के कारण उसके सेवानिवृत्ति लाभ रोक दिए गए थे। इसके अलावा अनुशासनात्मक जांच शीघ्रता से या उचित समय के भीतर पूरी नहीं की गई और इसे ठंडे बस्ते में डाल दिया गया और सजा का अंतिम आदेश 03.06.1999 को पारित किया गया। इस प्रकार, अनुशासनात्मक जांच को पूरा होने में 8 साल लग गए। इस तरह की अत्यधिक देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है, जिससे याचिकाकर्ता को मानसिक पीड़ा और पीड़ा हुई और अंततः प्रत्यर्थी के खिलाफ अपनी लड़ाई लड़ते हुए, याचिकाकर्ता इस दुनिया को छोड़कर चला गया और यहां तक कि इस याचिका के लंबित रहने के दौरान उसकी पत्नी की भी मृत्यु हो गई। इसके बाद, उनके कानूनी प्रतिनिधियों को रिकॉर्ड पर प्रतिस्थापित कर दिया गया है।

12. विभागीय कार्यवाही शुरू करने में देरी के मुद्दे और इसके प्रभाव को नियंत्रित करने वाले कानूनी सिद्धांतों पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***1995 (2) एससीसी 570 पंजाब राज्य बनाम चमन लाल गोयल*** में विचार किया है जिसमें निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किये गये;

> "यह कहना उचित है कि ऐसी अनुशासनात्मक कार्यवाही अनियमितताएं होने के तुरंत बाद या अनियमितताओं का पता चलने के तुरंत बाद की जानी चाहिए। काफी समय बीत जाने के बाद भी इन्हें शुरू नहीं किया जा सका। यह दोषी अधिकारी के प्रति उचित नहीं होगा। इस तरह की देरी से आरोप साबित करने का काम भी मुश्किल हो जाता है और यह प्रशासन के हित में भी नहीं है। कार्यवाही शुरू होने में देरी से पक्षपात,

दुर्भावना और सत्ता के दुरुपयोग के आरोपों को जगह मिलना तय है। यदि देरी बहुत लंबी है और अस्पष्ट है, तो अदालत हस्तक्षेप कर सकती है और आरोपों को रद्द कर सकती है। लेकिन कितनी देरी कितनी लंबी है यह हमेशा दिए गए मामले के तथ्य पर निर्भर करता है। इसके अलावा, यदि इस तरह की देरी से दोषी अधिकारी को अपना बचाव करने में प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, तो जांच को रोकना होगा। जहां भी ऐसी कोई याचिका उठाई जाती है, अदालत को उक्त याचिका के पक्ष और विपक्ष में आने वाले कारकों पर विचार करना होता है और परिस्थितियों की समग्रता पर निर्णय लेना होता है। दूसरे शब्दों में, अदालत को संतुलन की प्रक्रिया में शामिल होना होगा।"

13. फिर से माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **1998 (4) एससीसी 154 आंध्र प्रदेश सरकार बनाम एन. राधाकिशन** में देरी के आधार पर जांच कार्यवाही को रद्द करने के मुद्दे से निपटते हुए कानून के निम्नलिखित सामान्य प्रस्ताव रखे:

"सभी मामलों और सभी स्थितियों में जहां अनुशासनात्मक कार्यवाही के समापन में देरी होती है, वहां लागू होने वाले किसी भी पूर्व निर्धारित सिद्धांत को निर्धारित करना संभव नहीं है। क्या उस आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही समाप्त की जानी है, प्रत्येक मामले की जांच उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर की जानी चाहिए। मामले का सार यह है कि अदालत को सभी प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखना होगा और यह निर्धारित करने के लिए उन्हें संतुलित और तौलना होगा कि क्या यह हित में है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही को देरी के बाद समाप्त करने की अनुमति दी जानी चाहिए, खासकर जब देरी असामान्य हो और देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है। दोषी कर्मचारी को यह अधिकार है कि उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शीघ्रता से पूरी की जाए और कार्यवाही में देरी करने में उसकी ओर से कोई चूक किए बिना उसे

अनावश्यक रूप से लंबे समय तक चलने पर मानसिक पीड़ा और मौद्रिक हानि का सामना न करना पड़े। इस बात पर विचार करने में कि क्या देरी से अनुशासनात्मक कार्यवाही ख़राब हुई है, अदालत को आरोप की प्रकृति, उसकी जटिलता और उस कारण से हुई देरी पर विचार करना होगा। यदि देरी अस्पष्ट है तो दोषी कर्मचारी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। यह भी देखा जा सकता है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने कर्मचारी के खिलाफ आरोपों की पैरवी करने में कितना गंभीर है। यह प्रशासनिक न्याय का मूल सिद्धांत है कि जिस अधिकारी को कोई विशेष कार्य सौंपा गया है उसे अपने कर्तव्यों का पालन ईमानदारी, कुशलतापूर्वक और नियमों के अनुसार करना होगा। यदि वह अपने मार्ग से विचलित होता है तो उसे निर्धारित दंड भुगतना पड़ता है। आम तौर पर, अनुशासनात्मक कार्यवाही को प्रासंगिक नियमों के अनुसार अपना काम करने की अनुमति दी जानी चाहिए, लेकिन देरी होने पर न्याय नहीं मिल पाता। देरी से आरोपित अधिकारी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जब तक कि यह नहीं दिखाया जा सके कि वह देरी के लिए दोषी है या जब अनुशासनात्मक कार्यवाही के संचालन में देरी के लिए उचित स्पष्टीकरण नहीं है। अंततः न्यायालय को इन दो विविध विचारों को संतुलित करना है।"

14. **एम.वी. बिजलानी (सुप्रा.)** के मामले के अनुसार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि 6 साल के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करना और 7 साल की अवधि के लिए इसे जारी रखना दोषी अधिकारी के प्रति पूर्वाग्रह पैदा करता है और कार्यवाही को रद्द कर देता है, इसे पैरा 16 में निम्नानुसार माना गया है:

"16. जहां तक दूसरे आरोप का सवाल है, यह नहीं दिखाया गया है कि निर्धारित नियमों या अन्यथा के संदर्भ में अपीलार्थी के क्या कर्तव्य थे। इसके अलावा, अनुशासनात्मक प्राधिकारी या अपीलीय प्राधिकारी द्वारा यह नहीं दिखाया गया है कि शीट के

माध्यम से एसीई-8 रजिस्टर का रखरखाव कैसे और किस तरीके से किया गया था, जो अनुमान फ़ाइल के साथ संलग्न पाए गए थे, जिससे कि अपीलार्थी का दोष या अन्यथा निष्कर्ष निकाला जा सके। अपीलीय प्राधिकारी ने अपने आदेश में कहा कि अपीलार्थी को एसीई-8 रजिस्टर दो बार तैयार करने की आवश्यकता नहीं है। अपीलार्थी ने संभवतः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए रजिस्टर का एक और सेट तैयार किया होगा कि उसे रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्रियों के आधार पर इसका हिसाब देने के लिए कहा गया था। ट्रिब्यूनल और उच्च न्यायालय भी इस बात पर विचार करने में विफल रहे कि अनुशासनात्मक कार्यवाही छह साल बाद शुरू की गई थी और यह सात साल की अवधि तक जारी रही और इस प्रकार, इतने लंबे समय के बाद अपराधी अधिकारी पर अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करना और उसे जारी रखना भी स्पष्ट रूप से पूर्वाग्रहपूर्ण था।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इसी तरह का विचार **पी.वी. महादेवन (सुप्रा.),** पैरा 11 के मामले में भी व्यक्त किया है, जो इस प्रकार है:-

"11. इन परिस्थितियों में, हमारी राय है कि प्रत्यर्थी को इतने समय में विभागीय कार्यवाही आगे बढ़ाने की अनुमति देना याचिकाकर्तागण के लिए बहुत प्रतिकूल होगा। किसी उच्च सरकारी अधिकारी को भ्रष्टाचार और विवादित सत्यनिष्ठा के आरोपों में रखने से संबंधित अधिकारी को असहनीय मानसिक पीड़ा और परेशानी होगी। इसलिए, एक सरकारी कर्मचारी के खिलाफ लंबी अनुशासनात्मक जांच से न केवल सरकारी कर्मचारी के हित में, बल्कि सार्वजनिक हित में और सरकारी कर्मचारियों के मन में विश्वास जगाने के हित में भी बचा जाना चाहिए। इस स्तर पर, पर्दा उठाना और पूछताछ समाप्त करना आवश्यक है। अनुशासनात्मक कार्यवाही के कारण अपीलार्थी को पहले ही काफी कष्ट झेलना पड़ा था। वास्तव में, लंबी

अनुशासनात्मक कार्यवाही के कारण अपीलार्थी की मानसिक पीड़ा सज़ा से कहीं अधिक होगी। अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की प्रक्रिया में विभाग द्वारा की गई गलतियों के लिए अपीलार्थी को कष्ट नहीं उठाना चाहिए।

16. इसी तरह प्रकाशित **यूको बैंक बनाम राजेंद्र कुमार शुकला 2018 (14)** के मामले में **एससीसी 92** में इसे पैरा 12 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:-

"12. हमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिलता है। हालाँकि, हमारे लिए कुछ तथ्यों को उजागर करना आवश्यक है जो विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों के दौरान हमारे ध्यान में लाए गए थे। चिंता का पहला मुद्दा शुक्ला के खिलाफ आरोप-पत्र जारी करने में लगभग 7 साल की अत्यधिक देरी है। इस अस्पष्ट देरी का कोई स्पष्टीकरण नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि बैंक के भीतर कुछ आंतरिक चर्चाएँ चल रही थीं लेकिन बैंक को अपना मन बनाने में 7 साल लग गए, यह पूरी तरह से अनुचित और अस्वीकार्य है। इस आधार पर ही, शुक्ला के खिलाफ आरोप-पत्र जारी होने में अत्यधिक और अस्पष्ट देरी के कारण रद्द किया जा सकता है।"

17. इसी प्रकार **भूपेन्द्र पाल सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य 2021 एससीसी ऑनलाइन बॉम 6073** के मामले में खंडपीठ में रिपोर्ट की गई है, जिसमें कुछ सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं उन्हें पैरा 32 में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है:

"32. उपरोक्त निर्णयों से जो सिद्धांत प्रतिपादित किए जा सकते हैं, उन्हें संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है:

क. कथित कदाचार का पता चलने के तुरंत बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करना हमेशा वांछनीय होगा, लेकिन यदि ऐसा पता चलने के बाद काफी समय बीत जाने के बाद आरोप-पत्र जारी किया जाता है, तो आरोपित

अधिकारी के खिलाफ इस आधार पर कार्रवाई करना अनुचित होगा।

ख. आरोप-पत्र के चरण में अनुशासनात्मक कार्यवाही पर रोक नहीं लगाई जा सकती है और इसे प्रासंगिक नियमों के अनुसार आगे बढ़ने की अनुमति दी जानी चाहिए क्योंकि आरोप-पत्र अपराधी के किसी भी कानूनी अधिकार को प्रभावित नहीं करता है, जब तक कि निश्चित रूप से, यह अमान्यता से कार्यवाही के मूल में ग्रस्त न हो।

ग. यदि अपराधी के खिलाफ आरोप तैयार करके अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में देरी होती है और ऐसी कार्यवाही को चुनौती दी जाती है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी देरी के कारणों को समझाने के लिए बाध्य है; और, ऐसे कारणों के महत्व के आधार पर, न्यायालय एक या दूसरे तरीके से निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ सकता है।

घ. 'बहुत लंबी देरी' की श्रेणी में आने के लिए वर्षों के संदर्भ में देरी का कोई सटीक माप नहीं किया जा सकता है, और इसकी मात्रा क्या होगी, यह किसी दिए गए मामले के तथ्यों के आधार पर तय किया जाना चाहिए।

ङ. यदि विलंब बहुत लंबा और अस्पष्ट पाया जाता है, तो इससे निश्चित रूप से आरोपित अधिकारी के खिलाफ आरोपों को आगे बढ़ाने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी की गंभीरता पर असर पड़ेगा और न्यायालय, उचित और उचित मामले में, पूर्वाग्रह के कारण कार्यवाही को रद्द कर सकता है। ऐसे मामले में अधिकारी के प्रति सीधे तौर पर बड़ी लापरवाही बरती जाएगी।

च. भले ही, किसी दिए गए मामले में, देरी को संतोषजनक ढंग से समझाया गया हो, फिर भी आरोप-पत्र को रद्द

किया जा सकता है यदि आरोपित अधिकारी अदालत की संतुष्टि के लिए यह साबित कर देता है कि यदि कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी गई तो एक फोर्टियोरी, अनुचित व्यवहार के दावे को विश्वसनीयता प्रदान करना गंभीर पूर्वाग्रह होगा।

छ. अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की प्रक्रिया में विभाग द्वारा की गई गलतियों के लिए आरोपित अधिकारी को दंडित नहीं किया जाना चाहिए।

ज. यदि आरोप गंभीर हैं तो अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में देरी कोई समस्या पैदा करने वाला कारक नहीं हो सकती है और ऐसे मामले में कार्यवाही जारी रखने के पक्ष और विपक्ष में कारकों के साथ-साथ आरोपों की गंभीरता को किसी नतीजे पर पहुंचने से पहले एक उचित निष्कर्ष संतुलित किया जाना चाहिए।

18. इसके अलावा, जहां अनुशासनात्मक जांच सेवानिवृत्ति के बाद पूरी की जाती है, वहां ऐसी जांच की सजा का दायरा बहुत सीमित होता है। राजस्थान सिविल सेवा (पेंशन) नियम, 1996 (संक्षेप में, '1996 के नियम') के नियम 7 के अनुसार, पेंशन या उसके किसी भी हिस्से को रोकने के रूप में सजा, जैसा प्राधिकारी उचित समझे, दी जा सकती है, जहां एक पेंशनभोगी को उसकी सेवा की अवधि के दौरान कथित तौर पर गंभीर कदाचार का दोषी पाया जाता है। जबकि वर्तमान मामले में, यदि याचिकाकर्ता की ओर से सीसीए नियम, 1958 के नियम 19 के तहत उनके खिलाफ कार्यवाही शुरू करने के लिए उपरोक्त दो जेल प्रहरियों के मामले की सिफारिश नहीं करने में अपने कर्तव्यों के पालन में कोई लापरवाही हुई है तो इस तरह की चूक को वास्तव में गंभीर कदाचार नहीं माना जा सकता है ताकि कथित कृत्य की तारीख से 22 साल के बाद दो साल के लिए 5% पेंशन की कटौती का जुर्माना लगाया जा सके। अतः ऐसी स्थिति पेंशन नियम, 1996 के नियम 7 के मापदण्डों में नहीं आती है।

<u>निष्कर्ष:</u>

16. उपरोक्त चर्चा की समग्रता से यह न्यायालय निम्नलिखित निष्कर्ष निकालता है कि सजा का आक्षेपित आदेश कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है और इसे रद्द कर दिया जा सकता है। परिणाम में:-

क) रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

ख) दिनांक 03.06.1999 का विवादित आदेश रद्द किया जाता है।

ग) पेंशन से कटौती की गई राशि, यदि कोई हो, याचिकाकर्ता के कानूनी प्रतिनिधियों को 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ तीन महीने के भीतर वापस कर दी जाएगी।

घ) लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(अनूप कुमार ढंड), न्यायमूर्ति

Pcg/MR/3

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म **राजभाषा सेवा संस्थान** द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ. वी. के. अग्रवाल, द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।